TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

TIGHT BINGING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180448

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H82.6 S25K Accession No. GH2365

Author शरण, सत्येन्द्र

Title कुमाऊं 1450

This book should be returned on or before the date last marked below.

कुंदमाला

सन् १६४७ में

लिखित

सत्येन्द्र शरत् की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

नील कमल	(कहानियाँ)
तार के खंभे	(एकांकी नाटक)
नई सुबह	(स्टडी स्केच)

कुंदमाला

सत्येन्द्र शरत्

नीलाभ प्रकाशन गृह
इलाहाबाद

प्रकाशक :
नीलाभ प्रकाशन गृह
५, खुसरोबाग रोड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
मूल्य १

मुद्रक :
पं० भगन कृष्ण दीक्षित, एम० ए०
दीक्षित प्रेस, प्रयाग

भूमिका

श्री सत्येन्द्र शरत् एम. ए. के कई मौलिक एकांकी इधर प्रकाशित हुए हैं। कहानी और शब्द-चित्र में भी इनकी रचनात्मक प्रतिभा, कला और अनुभूति का मनोरम और सुंदर संयोग है। इतनी थोड़ी आयु और बाल-सुलभ भोलेपन के भीतर भविष्य का यशस्वी साहित्यकार सजग हो रहा है जिसमें आकर्षण और प्रेरणा है; आशा और विश्वास है। इनके एकांकी नाटक मुझे संयत और विवेकपूर्ण लगे हैं। भावनाओं की बाढ़ में बह जाने का रोग जो आरंभिक साहित्यकार में होता है वह इनमें नहीं है। जीवन और जगत का स्वाभाविक अनुभव, इनकी कला में यथार्थ और आदर्श का भेद मिटा कर जिस साहित्य का निर्माण कर रहा है उसमें निष्ठा और जिज्ञासा है; साथ ही साथ सीधे शब्दों में सभी बातें कह जाने का ढंग भी इनका अनोखा है। मौलिक नाटक का लिखने वाला जब किसी पुराने नाटक का आधुनिक रूप हिंदी में देगा तो निश्चय है उस पुरानी रचना के गुणों पर रीझ कर।

धीरनाग के संस्कृत नाटक 'कुंदमाला' का यह हिंदी रूपांतर नाटक को आधुनिक मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर सत्येन्द्र ने किया है। छः अंकों के इस मूल संस्कृत नाटक का हिंदी रूप केवल तीन अंकों में प्रस्तुत करना एक प्रकार से इस नाटक का नया जन्म कहा जायेगा। फिर भी तीन अंकों में छः अंक की सारी

आवश्यक घटनायें, परिस्थितियाँ संवाद और चित्रण आ गये हैं। पढ़ने पर मौलिक रचना का रस और आनद मिलता है।

धीरनाग के इस नाटक को कुछ लोग विख्यात बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग की रचना मानते हैं। सत्येन्द्र भी इसी विचार के हैं। उनकी राय में इस नाटक का प्रभाव कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतल' और भवभूति के 'उत्तर रामचरित' पर पड़ा है। दूसरी ओर 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में श्री पं० बलदेव उपाध्याय के मत में यह कदापि मान्य नहीं। बौद्ध कवि अपने मार्मिक विषय को छोड़ कर रामचरित पर नाटक लिखेगा—यह सहसा विश्वास नहीं होता। भवभूति के पर्याप्त अनुकरण होने के कारण अष्टम शतक के कथमापि प्राचीन नहीं हो सकता।

जातक कथाओं में रामायण और महाभारत की कथा सुनना भी बौद्ध भिक्षुओं के लिए वर्जित है। इस स्थिति में दिङ्नाग की कोटि का बौद्ध दार्शनिक रामचरित पर नाटक लिखेगा, यह पं०बलदेव उपाध्याय की तरह बहुतों के लिए संदेह का कारण होगा। पर जब हम जैन स्वयंभू को रामायण और हरिवंश के रचनाकार के रूप में जानते हैं तब इस तर्क को आँख मूँद कर नहीं मान सकते। वत्सराज उदयन के चरित्र को बौद्ध कथाओं में हीन किया गया है। दूसरी ओर बौद्ध सम्राट हर्षवर्धन उदयन के चरित्र पर 'प्रिय दर्शिका' और 'रत्नवाली' दो नाटिकाओं के रचयिता हैं। ऐसे और भी उदाहरण या अपवाद मिलेंगे।

धीरनाग का यह नाटक अभी हाल ही में खोज कर प्रकाशित किया गया है। पहले यह लुप्त क्यों रहा है? यह बात भी विचारणीय है। भवभूति का प्रभाव इस नाटक पर है या इसका प्रभाव भवभूति के 'उत्तर रामचरित्र' पर है? संभव है, इसका ठीक पता अधिक अनुशीलन के बाद विद्वानों को चल जाय। नाटक की सारी गठन में, घटनाओं और परिस्थितियों के चित्रण में, इसके समूचे भाव-लोक में विस्मय, कौतुक, मार्मिक अनुभव के साथ ही साथ रहस्य की प्रधानता है। वाल्मीकि का आश्रम नैमिषारण्य में माना गया है जो और किसी दूसरे प्रमाण से पुष्ट नहीं होता। निश्चय ही यह रचना किसी भावुक, रसशील और राग रंजित हृदय की है जो बौद्ध आचार्य दिङ्नाग की मेधा-शक्ति के साथ मेल नहीं खाती। जिसने ईश्वर पर विश्वास नहीं किया वह मेधावी, तर्क और मीमांसा का वह अग्नि-पिंड जिसके भ्रू-क्षेप से वैदिक देवताओं के आसन हिला करते थे, वाल्मीकि की योग या माया-शक्ति में विश्वास कर जानकी और आश्रम की दूसरी स्त्रियों को पुरुष-दृष्टि में अदृश्य कैसे कर देता है? रहस्य और विस्मय की उद्भावना भाव-प्रवण तरुण हृदय का काम है। जानकी का प्रेम, राम की मूर्च्छा, लक्ष्मण का परिताप, वाल्मीकि का ओजस क्रोध और कर्त्तव्य भावावेश के व्यापार हैं, तात्विक चिंतन के नहीं। दिङ्नाग की गणना इस देश के तत्त्वदर्शी दार्शनिकों में है। किशोर वयस और किशोर प्रवृत्ति की यह रचना संभव है किसी भावुक तरुण ने की हो और फिर बाद में उसका नाम धीरनाग या दिङ्नाग पड़ गया हो। कम से कम नाटक में चित्रित विषय, व्यापार और

संवाद इसी निष्कर्ष पर ले जाते हैं कि इस रचना का संबंध बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग से नहीं है।

विभिन्न रसों का सुंदर परिपाक इस नाटक में हुआ है। साथ ही नाटक-रचना के शास्त्रीय सिद्धांतों का निर्वाह भी। फिर भी इसकी शैली न तो कालिदास-सी प्रौढ़ है और न भवभूति-सी विचारोत्तेजक। वसंत के समीर-सी हृदय को हिला देने वाली मार्मिकता इस में आदि से अंत तक है। इसी गुण पर रीझ कर तरुण सत्येन्द्र ने इसका हिंदी रूपांतर किया है। इस तरह के रूपांतर जो कहीं संस्कृत के सभी नाटकों के हो जाते तो हमारे साहित्यकार जो केवल अंग्रेज़ी के प्रभाव में साहित्य का निर्माण करते रहे हैं, थोड़ा सोचते और अपने साहित्य को अपने इस देश के पुराने साहित्य की लड़ी में पिरोने का यत्न भी करते। विद्यार्थियों और तरुणों की भाव-धारा पर यह नाटक अंकुश का काम करेगा और आरंभिक नाटककारों को राह भी दिखायेगा। संवादों के घटाटोप में नहीं, वरन् व्यापारों की स्वाभाविकता में इस नाटक की विशेषता है—जिस विशेषता के बल पर संस्कृत नाटक यूनानी नाटकों से एकदम अलग देखे जा सकते हैं।

आशा है सत्येन्द्र शरत् संस्कृत के और नाटकों का भी ऐसा ही सुलझा रूपांतर हिंदी साहित्य को भेंट करेंगे।

क्रास्थवेट रोड
प्रयाग
१८ मार्च १९५०

लक्ष्मीनारायण मिश्र

निवेदन

'कुंदमाला' संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान श्री दिङ्नाग का एक उच्च कोटि का नाटक है। सन् १९२३ ई० में श्री एम० रामकृष्ण कवि तथा श्री के० रामनाथ शास्त्री ने इसकी खोज कर मद्रास से इसे प्रकाशित किया था। नाटककार के जीवन के संबंध में नाटक से कुछ अधिक ज्ञात नहीं होता, क्योंकि प्रस्तावना में उसने अपने नाम (दिङ्नाग) तथा अपने ग्राम के नाम (अरारालपुर) के अतिरिक्त कोई और बात अपने संबंध में नहीं लिखी है। किंतु तंजौर राज्य के पुस्तकालय में 'कुंदमाला' की जो हस्तलिखित प्रति मिलती है उसमें नाटककार का नाम धीरनाग दिया हुआ है। इससे मन में प्रश्न उठता है कि लेखक का वास्तविक नाम क्या है? नाटककार का नाम दिङ्नाग ही था—इस विचार की पुष्टि के लिए एक प्रमाण भी मिलता है। कालिदास के 'मेघदूत' में एक पद्य मिलता है जिसमें उन्होंने निचुल और दिङ्नाग नाम के अपने प्रतिस्पर्धी दो कवियों का उल्लेख किया है—

"स्थानादस्मात् सरस निचुलादुत्पतोदङ् मुखः खम्।
दिङ्नागानाम् पथिपरिहरन् स्थूल हस्तावलेपान्॥"

इससे सिद्ध होता है कि कालिदास और दिङ्नाग समकालीन अवश्य थे। कालिदास का समय ३६०-४२० ई० उत्तर माना जाता है। यही समय (३८५ ई०-४२५ ई०) बौद्ध विद्वान श्री दिङ्नाग का भी माना जाता है। किंतु यहाँ फिर प्रश्न उठता है कि एक कट्टर बौद्ध रामचरित्र को अपने ग्रंथ का विषय कैसे बना सकता है? उत्तर में

यही संभावना प्रतीत होती है कि बौद्ध धर्म की दीक्षा लेने के पूर्व ही दिङ्नाग कदाचित् यह नाटक लिख चुके थे।

प्रस्तुत नाटक अत्यंत सरस, सुंदर और मर्म-स्पर्शी होते हुए भी पूर्णतया अभिनीत नहीं है; कारण कई हैं—एक तो यह कि नाटक प्राचीन ढंग का है। दूसरे इस में छः अंक और दो-एक प्रवेशक आदि हैं। पहले अंक व दूसरे अंक की कथा-वस्तु में दस-बारह वर्ष का अंतर पड़ जाता है। इसी प्रकार पात्रों के संवाद भी प्राचीन परिपाटी और आदर्श के प्रतिबिंब, लंबे, कविता के अंशों से पूर्ण और अत्यधिक विस्मयादि-बोधकों से युक्त हैं।

मैंने नाटक को अभिनय की सुविधा के लिए आधुनिक टेकनीक के अनुसार तीन अंकों का कर दिया है और संवादों को नये सिरे से घटा-बढ़ा कर लिखा है। इस परिवर्त्तन के पश्चात् भी नाटकीय कथानक और सौंदर्य में क्षति नहीं आ पायी है। नाटक के पहले अंक की कथा को मैंने उपक्रम में दे दिया है। अभिनय करने वाले अपनी सुविधा के लिए उपक्रम को छोड़ सकते हैं।

यह रूपांतर संस्कृत से किया गया है। नाटककार के भाव और आशय की रक्षा का मैं ने यथा-संभव प्रयत्न किया है।

रूपांतर के तीसरे अंक के पद्य श्री सुमित्रानंदन पंत द्वारा शोधित हैं। भूमिका श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने लिखी है। इन दोनों गुरुजनों के समक्ष मैं आभारी हूँ।

१६ पार्क रोड
इलाहाबाद
२४ मार्च १९५०

सत्येन्द्र शरत्

स्वर्गवासिनी माताजी की पुण्य स्मृति में

[इस नाटक को खेलने
से पहले लेखक अथवा
प्रकाशक की अनुमति
लेना आवश्यक है]

पात्र सूची

महाराज राम —कथा नायक, अयोध्या के महाराज

लक्ष्मण —महाराज राम के छोटे भाई

कौशिक —महाराज राम के मित्र, विदूषक

महर्षि वाल्मीकि
कण्व ऋषि —आश्रमवासी ऋषि

लव
कुश —महाराज राम के पुत्र

मुनि कुमार, सभा में उपस्थित व्यक्ति आदि

वनवासिनी देवी सीता—महाराज राम की पत्नी, लव-कुश की माता

वेदवती —वाल्मीकि आश्रम की मुनि कन्या, सीता की सखी

पृथ्वी माता —पृथ्वी की पूजिता देवी

तीनों राजमातायें —देवी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा

तीनों राज-पत्नियाँ —देवी उर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति

उपक्रम

(एवं कथा)

[वन का एक भाग। सुंदर और ऊँचे वृक्ष। पीछे की ओर पुष्करिणी प्रवाहित हो रही है। अस्ताचलगामी सूर्य की तिरछी पड़ती हुई किरणें वृक्षों की चोटियों पर से फिसलती हुई पुष्करिणी की तरंगों को स्वर्णिम कर रही हैं।

लक्ष्मण और सीता का प्रवेश। सीता बहुत क्लांत तथा थकी हुई प्रतीत हो रही हैं और धीरे-धीरे चल रही हैं।]

सीता : वत्स लक्ष्मण ! थकान के कारण मेरे पैर आगे नहीं बढ़ रहे हैं। माता गंगा अब कितनी दूर है ?

लक्ष्मण : अब दूर कहाँ ? हम आ पहुँचे हैं। यह देखिये, स्वच्छ जल-तरंग के छींटों को उछालती हुई, पुष्करिणी की ओर से यह वायु, आपको स्पर्श करने आ रही है।

[वायु का एक झोंका सीता की ओर आता है। उनकी लटें उड़ने लगती हैं। वायु के शीतल स्पर्श से सीता का चेहरा खिल जाता है।]

सीता : (प्रसन्न स्वर में हाथ से लटों को पीछे करती हुई) माता के स्पर्श के समान सुखद, पुष्करिणी का शीतल झोंका लगने से थकान की तरह पाप भी कट गये हैं। (रुक कर) वत्स, मैं इस

वृक्ष की छाया में घड़ी भर विश्राम करना चाहती हूँ।

लक्ष्मण : जैसे आपकी इच्छा।

[सीता एक वृक्ष के नीचे बैठ जाती हैं। लक्ष्मण थोड़ा दूर पर उद्विग्न भाव से टहलते रहते हैं।]

लक्ष्मण : (स्वगतः) देवी विश्राम कर रही हैं और शांतिपूर्वक बैठी हैं। यही समय है कि मैं अपना कर्त्तव्य पालन करूँ।

[लक्ष्मण सहसा मुड़कर सीता की ओर आते हैं और उनके चरणों पर गिर जाते हैं। सीता घबरा जाती हैं।]

सीता : (घबराये स्वर में) उठो वत्स! यह तुम क्या कर रहे हो?

लक्ष्मण : आपके वन-वास दुःख का साझी यह कुलक्षणी लक्ष्मण प्रार्थना करता है कि आप अपने हृदय को दृढ़ कर लें।

सीता : (अत्यधिक घबरा कर) मेरे प्राणनाथ कुशल से तो हैं?

लक्ष्मण : (वन की ओर संकेत कर) इस दशा में कुशल कैसा?

सीता : माता कैकेयी ने फिर वनवास दे दिया है क्या?

लक्ष्मण : वनवास तो दिया है पर माता ने नहीं।

सीता : तब किसने ?

लक्ष्मण : महाराज ने।

सीता : (आश्चर्यपूर्वक) तो क्या महाराज ने वनवास मुझे दिया है ?

लक्ष्मण : केवल आपको ही नहीं, अपने आपको भी।

सीता : अपने आपको कैसे ?

लक्ष्मण : (चुप रहते हैं)

सीता : वत्स स्पष्ट कहो। आज मेरा वनवास उनका वनवास कैसे है ?

लक्ष्मण : (हिचकिचाते स्वर में) मैं अभागा और अधिक क्या कहूँ ?.....महाराज आपसे सम्बन्ध तोड़ चुके हैं। मुझे आपको इसी वन में छोड़ जाना है।

[लक्ष्मण दुःख से सिर नीचा कर लेते हैं। सीता शिला की भाँति जड़, निस्पंद हो जाती हैं। काफ़ी समय तक कोई भी कुछ नहीं बोल पाता।]

सीता : (सहसा, दीर्घ मौन तोड़ती हुई) मुझे किस दोष के कारण निर्वासित किया है ?

लक्ष्मण : (लज्जित भाव से) आप और दोष ?

सीता : (दुःखपूर्वक) ओह ! मैं कैसी अभागिन हूँ !..... तो बिना दोष ही मुझे निर्वासित किया गया है !.....मेरे लिए कोई संदेश है क्या ?

लक्ष्मण : महाराज ने केवल इतना कहा था कि देवी से कह देना कि—'हे गुणशालिनी, तुम सब

प्रकार से मेरे अनुकूल थीं। मेरे सुख-दुःख में, आपत्ति-विपत्ति में मेरी संगिनी थीं। यह जानते हुए भी मैं लोक-निंदा के कारण तुम्हारा परित्याग कर रहा हूँ। यह न समझना कि मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम अब समाप्त हो गया है।'

सीता : (साश्चर्य) लोक-निंदा का भय कैसा ? मुझसे कुछ भूल हुई है क्या ?

लक्ष्मण : आपसे भूल कैसी ? समस्त लोकपाल व ऋषि आदि अग्नि-परीक्षा के साक्षी हैं, किंतु.. ...

सीता : (लज्जापूर्वक) हाँ कहो, किंतु.....

लक्ष्मण : किंतु लोगों के मुँह पर नियंत्रण कौन कर सकता है ? वे सब.....

सीता : (लज्जापूर्वक) बस रहने दो। 'अग्नि-परीक्षा' शब्द से मुझे सब स्मरण हो आया है—रावण के बंदी-गृह निवास का वह दुःखद वृत्तांत !..... मेरे—सीता के—विषय में भी ऐसा संदेह किया जाता है !.....(रुक कर) संसार में कोई स्त्री न बने !... स्वामी द्वारा छोड़ी हुई, मैं भी क्या इन प्राणों को छोड़ दूँ ? उस निर्दय की उस ही जैसी संतान की रक्षा करनी होगी। क्या इसीलिए कलंक रूपी कंटक से दूभर इस जीवन को धारण किये रहूँ ? ...

[लक्ष्मण उठकर प्रणाम करते हैं]

लक्ष्मण : महाराज ने यह भी कहा है—

सीता : क्या कहा है ?

लक्ष्मण : यही कि देवी की मूर्त्ति मेरे मन-मंदिर में सदैव बसी रहेगी। स्वप्न में भी उनका आसन कोई सपत्नी न ले सकेगी।

सीता : यह संदेश भेज कर आर्यपुत्र ने मेरा परित्याग दुःख दूर कर दिया।

लक्ष्मण : संदेश के उत्तर में आपने कुछ कहना है ?

सीता : किसे ?

लक्ष्मण : महाराज को।

सीता : अब भी संदेश का उत्तर !.....तब भी चरणों में प्रणाम कर मेरी पूजनीया सासों से कह देना कि हिंस्र पशुओं से घिरे घोर वन में दिन काटती हुई अपनी इस अभागी पुत्र-वधु के लिए अपने हृदय में कभी-कभी मंगल-कामना कर लिया करें। (गला भर आता है)

लक्ष्मण : (सिर झुका कर) यह आज्ञा शिरोधार्य है। महाराज को कुछ नहीं कहना है ?

सीता : ऐसे निष्ठुर के लिए संदेश माँगते हो लक्ष्मण ! .. .. तो भी मेरे यह शब्द उन्हें सुना देना कि मुझ हतभागिनी के लिए दुःखी होकर, वर्णाश्रमों के पालन में शिथिलता कर, अपने आप-को घुलायें नहीं, पीड़ित न करें। सत्पुरुषों के अनुसरण और अपने शरीर की रक्षा में प्रमाद न करें। वत्स लक्ष्मण ! महाराज को मैं क्या उलाहना दूँ ?

लक्ष्मण : क्या आपको इतना भी अधिकार नहीं ?

सीता : अच्छा, तो उन्हें यह भी कह देना—मुझ निरपराध को हृदय से ही नहीं किंतु देश से भी इस प्रकार सहसा निकाल देना आपके लिए उचित न था।

लक्ष्मण : आपने अपना संदेश कह लिया.....

सीता : इतना और कहना—वह तपोवन में वास करने वाली हाथ जोड़ प्रार्थना करती है कि मुझे यदि किसी गुण से नहीं, तो चिर परिचित या अनाथ के नाते ही कभी-कभी याद कर लिया करें।

लक्ष्मण : मैं जानता हूँ, महाराज को ये बातें सुनकर अत्यधिक क्लेश होगा।

सीता : इतना विशाल राज्य होने पर भी दुःख में उनकी सहायता करने वाला कौन है ?..... अब मेरे पीछे अकेले तुम्हें ही उनकी चिंता करनी होगी। वत्स, उनके स्वास्थ्य का बहुत-बहुत ध्यान रखना।

लक्ष्मण : (सिर नवा कर) ये बातें आपकी महानता के अनुरूप ही हैं।

सीता : वत्स लक्ष्मण ! रघुकुल की राजधानी अयोध्या माता को मेरी ओर से प्रणाम करना। स्वर्गीय बड़े महाराज की प्रतिमा के चरण छूना। मेरी पूजनीया सासों की आज्ञा का पालन करना। सुभाषिणी उर्मिला और मेरी सखियों को ढारस

बँधाना, और.....और मुझ हतभागिनी को सदा स्मरण रखना। (रोने लगती हैं)

लक्ष्मण : (अत्यंत खेदपूर्वक, स्वतः) धिक्कार है मुझे! इन हत्यारे हाथों द्वारा निरीह भाभी को वन में छुड़वाने, और इन कुत्सित कानों द्वारा दीन भाभी का क्रंदन सुनवाने के लिए ही क्या महाराज ने मुझे उस भीषण मूर्च्छा से जगवाया था?.....इस समय तो मुझे अपने जीवन-दाता पवन-सुत हनुमान भी शत्रु जैसे प्रतीत हो रहे हैं।

[सीता अपने आँसू पोंछती हैं। दृष्टि ऊपर कर चारों ओर देखती हैं।]

सीता : वत्स, दिन ढल चुका है। इस वन में दूर-दूर तक किसी प्राणी का चिह्न नहीं है। पक्षियों ने भी वृक्षों पर अपना बसेरा लेना आरंभ कर दिया है। अब यहाँ अधिक रुकना तुम्हें उचित नहीं।

लक्ष्मण : (हाथ जोड़कर) पापी लक्ष्मण का यह अंतिम प्रणाम है। इसे स्वीकार कीजिये। (एक क्षण रुक कर) आपसे एक प्रार्थना भी है—अपने स्वामी, प्रियजन तथा घर के सुखों को स्मरण कर, आप खिन्न हों, इस वन में आत्मघात न कर लें। आपने सूर्य वंश की भावी संतति का भार धारण कर रखा है। इसका पालन आपका उत्तम कर्त्तव्य है।

सीता : (डबडबाये नेत्रों से) वत्स, तुम्हारी बात मैं कभी न टालूँगी।

लक्ष्मण : (आगे बढ़ते हुए) यह निवेदन और है—

सीता : क्या ?

लक्ष्मण : महाराज के आदेश से मैं आपको बिना दोष ही वन में छोड़ हार हूँ, इस कारण आप मुझ पर रोष न करें। (सीता के चरणों पर झुक जाते हैं)

सीता : बड़े भाई की आज्ञा का पालन कर रहे हो— इस संतोष के स्थान पर तुम्हें रोष की आशंका कैसी ?

लक्ष्मण : (हिचकते स्वर में) तो मुझे आज्ञा है न ?

[सीता आँसुओं के वेग के कारण मुंह दूसरी ओर कर लेती हैं। लक्ष्मण एक बार फिर प्रणाम कर प्रस्थान करते हैं। अंधकार अधिक प्रगाढ़ हो जाता है।]

सीता : (चारों ओर देखती हुई, सिकुड़ स्वर में) लक्ष्मण सचमुच ही चले गये ?.....हाय, धिक्कार है मुझे !..... सूर्य छिप गया है.. ...पक्षी अपने बसेरों में आ लिये हैं... हिंस्र पशु घूमने लगे हैं.....अंधकार बढ़ता जा रहा है.....इस भयंकर वन में मनुष्य का चिह्न तक नहीं दृष्टि-गोचर होता। मैं अभागिनी अब क्या करूँ ?... यह विछोह मेरे किन पापों का फल है ?..... (मूर्छित हो नीचे गिर जाती हैं)

[थोड़े समय पश्चात् महर्षि वाल्मीकि का दो मुनि-कुमारों के साथ प्रवेश। वे घबरायी मुद्रा में इधर-उधर दृष्टि डालते हैं।]

पहला कुमार : विलाप की ध्वनि यहीं से तो आ रही थी.....

वाल्मीकि : किंतु यहाँ तो कोई भी नहीं दिखायी देता।

दूसरा कुमार : (आगे कुछ देखता है, सहसा चौंक कर) अरे, उस ओर भूमि पर कोई पड़ा हुआ है।

[तीनों सीता के निकट जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि जल-पात्र में से सीता के मुख पर जल छिड़कते हैं। सीता चेतना प्राप्त करती हैं।]

सीता : (बैठने की चेष्टा करती हुई) कौन, लक्ष्मण ? तुम लौट आये क्या ?

वाल्मीकि : लक्ष्मण नहीं, मैं हूँ।

[सीता घबरा कर शीघ्रता से सिर पर आँचल कर लेती हैं, और उठ खड़ी होती हैं।]

सीता : (घबराये स्वर में) मैं असहाय अबला हूँ।

वाल्मीकि : (पीछे हो जाते हैं) मुझे पराया न समझो पुत्री ! गंगा-तट से स्नान-संध्या आदि कर लौटे हुए मुनि-कुमारों से तुम्हारा समाचार पाकर मैं तपस्वी यहाँ आया हूँ। (रुक कर) जिस श्रीराम ने रावण के साथ विकराल युद्ध कर धर्म से विजय प्राप्त की है उसके शासन-काल में तुम्हें किस ने कष्ट पहुँचाया है ?

सीता : (रोते हुए) उसी पूर्ण-चंद्र से तो मुझ पर वज्रपात हुआ है !

वाल्मीकि : तो महाराज श्री राम से ही तुम्हें यह दुःख मिला है !

सीता : हाँ मुनिवर !

वाल्मीकि : वर्ण और आश्रमों की व्यवस्था करने वाले राजन् श्रीराम ने यदि तुम्हें निर्वासित किया है तो मैं भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। भगवान तुम्हारा भला करें। मैं जाता हूँ। चलो कुमारो। (जाने को उद्यत होते हैं।)

सीता : (विकल स्वर में) मेरी एक प्रार्थना है।

वाल्मीकि : (रुक कर) कहो।

सीता : अयोध्यापति द्वारा निकाली गयी हूँ, इस कारण यदि आप मुझ पर दया नहीं करते तो कम से कम मेरे गर्भ में स्थित श्री रघु, सगर, दिलीप और दशरथ महानुभावों की वंशधर संतति पर ही अवश्य करुणा कीजिये।

वाल्मीकि : (ठिठक कर) अरे, यह तो सूर्य-वंश से ही अपना संबंध बता रही है। (आगे बढ़) बेटी, क्या तुम महाराज दशरथ की पुत्रवधू हो।

सीता : हाँ मुनिवर !

वाल्मीकि : और विदेहराज जनक की पुत्री—सीता ?

सीता : (दुःखपूर्वक) सीता नहीं भगवन् ! एक अभागिनी !

वाल्मीकि : हाय ! कैसा सर्वनाश है ! श्री राम ने महल से उतार तुम्हें भूमि पर क्यों बैठा दिया, और वह भी इस अवस्था में ?

[सीता लज्जा से मुँह दूसरी ओर कर लेती हैं ।]

वाल्मीकि : (सिर हिलाते हुए) समझ गया !...लोक-निंदा से डरे हुए श्री राम ने तुम्हें घर से ही निकाला है—हृदय से नहीं। तुम निरपराध हो । मैं तुम्हें यहाँ नहीं छोड़ सकता । चलो, मेरे आश्रम में चलो ।

सीता : भगवन आपका परिचय ?

वाल्मीकि : शंका न करो बेटी । मैं मिथिलेश का पुराना सुहृद वाल्मीकि हूँ । तुम मेरी पुत्री के समान हो ।

[सीता सिर नवा कर प्रणाम करती हैं ।]

वाल्मीकि : वीर प्रसवा हो बेटी, और फिर अपने पति की कृपा प्राप्त करो । आओ.....

[सीता चलने लगती हैं । सहसा रुकती हैं, और पुष्करिणी की ओर मुँह करती हैं ।]

सीता : माता पुष्करिणी, यदि मेरा प्रसव सुखपूर्वक हुआ तो मैं प्रतिदिन अत्यंत सुंदर कुंद पुष्पों

को माला गूँथ कर तुम्हें भेंट किया करूँगी।
(सिर नवा कर प्रणाम करती हैं)

वाल्मीकि : चलो बेटी ! आश्रम-वास तुम्हारे लिए शुभ हो।

[वाल्मीकि, मुनि-कुमारों और सीता का प्रस्थान।]

परदा गिरता है।

प्रथम अंक

[नैमिषारण्य में पुष्करिणी का तीर। पुष्करिणी कल-कल ध्वनि से प्रवाहित हो रही है। तट के निकट ही एक साल वृक्ष की छाया में वन-वासिनी परित्यक्ता देवी सीता चिंता में निमग्न हैं। उनके दुर्बल शरीर पर कठोर वल्कल वस्त्र हैं। फीके मुख-मंडल पर शिथिल अलकें बिखर रही हैं; हाथों में उसी समय की गूँथी हुई कुंदमाला है।]

सीता : (स्वतः) पुरुष-हृदय स्वभाव से ही निष्ठुर होने के कारण इतना धोखा दे सकता है!...स्वर्ग में उमा-महेश्वर, और पृथ्वी-तल पर सीता-राम का प्रेम आदर्श है—इस लोकोक्ति को जन्म दे कर भी आज मुझ निरपराधिनी की यह दुर्दशा कर दी है। हाय, किस मुँह से उनकी निंदा करूँ?...पहले मेरे स्वामी ने मेरा इतना आदर किया, फिर एक झूठे अपवाद के कारण मुझे कोसों दूर कर दिया.....निष्कारण.....मेरा जीवन पूर्ण दुःखमय कर दिया गया है। जब मैं स्वामी को प्रिय थी, तब समग्र मिथिला मेरा सत्कार करती थी—आज मेरी यह दुरवस्था है। स्वामी द्वारा परित्याग-दुःख इतनी पीड़ा नहीं देता जितनी लज्जा। किंतु अब तो मेरे सामने मेरे दो कुमार हैं, मेरे नेत्रों की ज्योति..... भगवान वाल्मीकि सब प्रकार हमारा ध्यान रखते हैं।

[सीता की सखी वेदवती का प्रवेश]

वेदवती : (स्वतः) ग्रीष्म ऋतु में कुम्हलाई लता की भाँति, कृश अंगों वाली, चिंता निमग्ना मेरी यह प्रिय सखी साल की छाया में यहाँ बैठी है। (आगे बढ़) सखी वैदेही !

सीता : (वेदवती को देख, मुस्कराने की असफल चेष्टा कर) वेदवती, आओ। (उठ खड़ी होती हैं)

वेदवती : (सीता का आलिंगन कर) कहो, लव-कुश तो कुशल से हैं ?

सीता : हाँ, कुशल से हैं, जैसी वनवासियों की कुशल होती है।

वेदवती : और तुम ?

सीता : (अपनी अनगुँथी वेणी दिखा कर) इसे देख लो।

वेदवती : अरी मूढ़ ! निर्दय स्वामी के लिए तुम कृष्ण-पक्ष की चंद्रमा की नाईं दिन प्रति दिन क्षीण क्यों होती जा रही हो ?

सीता : (शुष्क मुस्कराहट से) वे निर्दय क्यों है ?

वेदवती : इसलिए कि उन्होंने तुम्हारा परित्याग कर दिया है।

सीता : क्या स्वामी ने मेरा परित्याग कर दिया है ?

वेदवती : लोग तो ऐसा ही कहते हैं ।

सीता : उन्होंने शरीर से मुझे अवश्य त्याग दिया है, किंतु हृदय से नहीं त्यागा।

वेदवती : पराये हृदय को तुम कैसे जानती हो ?

सीता : राम का हृदय सीता के लिए पराया कैसे होगा ?

वेदवती : क्या राम का अनुराग घटा न होगा ?

सीता : यदि अनुराग घट जाता तो वे मुझ अभागिनी के लिए सेतु-बंधन जैसा दुस्तर कार्य करते ?

वेदवती : रावण से तुम्हारा उद्धार करना उनका कर्त्तव्य था। यदि राम तुम्हारा उद्धार न करते तो सूर्य वंश के निर्मल आकाश में वे धूमकेतु-तुल्य हो जाते । अधर्म की धर्म पर, तथा अन्याय की न्याय पर विजय होती। सेतु-बंधन का कारण, राम का सीता के प्रति अनुराग न था।

सीता : न सही, किंतु तुम यह नहीं देखती हो कि अभी तक उनका वक्षःस्थल सह-पत्नियों के निःश्वास से अपवित्र नहीं हुआ है।

वेदवती : किंतु कब तक ? राम की यज्ञ-दीक्षा का समय समीप ही है । तब तो उन्हें धर्मपत्नी का पाणिग्रहण अवश्य ही करना पड़ेगा।

सीता : (उदास स्वर में) स्वामी के हृदय पर मेरा अधिकार है, उनके हाथ पर नहीं।

वेदवती : (दुःखित होकर) यदि ऐसा है तो शोक क्यों करती हो ?..... क्या पुत्रों का मुख देखकर भी शोक दूर नहीं होता ?

सीता : शोक को दूर करने का यह उपाय उल्टा उसे बढ़ाने वाला है। लव-कुश को देख मुझे सदैव

स्वामी का स्मरण हो आता है। इससे शोक की मात्रा और बढ़ जाती है।

वेदवती : सखी, न जाने क्यों मेरे अंतर से यह रह-रह कर उठता है कि इस यज्ञ के सु-अवसर पर महाराज राम तुझे फिर ग्रहण कर लेंगे।

सीता : (दीर्घ निःश्वास लेकर) रावण के बंदीगृह में तो स्वामी से फिर मिलने की आशा मेरा अवलम्ब थी, किंतु अब तो वह भी नहीं है। अब तो केवल यही कामना है कि महाराज अपने इन पुत्रों को ग्रहण कर लें।

वेदवती : धीरज धर सखी, तेरे दुःखों का अब अंत हो चला है · ...

[सहसा नेपथ्य-वाणी होती है। पहले डुगडुगी और फिर—

'हे आश्रमवासियो ! आप सब सुनें—यहाँ से कुछ ही दूर पर महाराज राम का अश्वमेध महायज्ञ शुरू हो रहा है। यज्ञ-सामग्री सब उपस्थित है। नाना देश निवासियों के अतिरिक्त श्री वशिष्ठ, आत्रेय आदि सब ऋषि पधारे हैं। भगवान वाल्मीकि की प्रतीक्षा में महाराज राम अभी तक यज्ञ में दीक्षित नहीं हुए हैं। मुनि-गण तथा मुनि-कन्याओं से निवेदन है कि तीर्थों का विमल जल तथा पूजा-सामग्री सजा कर शगुन शुभ करतीं शीघ्र पधारें।'

वेदवती : अरे देखो तो सही, हम दोनों यहाँ कितनी निश्चिंत हो बैठी हैं। चल उठ, महाराज का वास समीप ही है; न जाने कितने पर-पुरुषों की दृष्टि हम पर पड़ती होगी।

सीता : (मुस्करा कर) घबरा न! तू आश्रम से अभी आयी है न! इस कारण तुझे यह मालूम नहीं है कि तपस्विनियों के मुनि वाल्मीकि से प्रार्थना करने पर कि 'आजकल महाराज राम के यहाँ आये रहने के कारण पुष्करिणी पर सब तरह के लोगों की दृष्टि पड़ती रहती है, इस कारण कमल तोड़ने तथा स्नानादि कार्य के लिए यह हमारे योग्य नहीं रही, वाल्मीकि जी ने ध्यान कर यह कह दिया है कि अब से इस पुष्करिणी पर स्नान आदि करने आयी हुई स्त्रियाँ पुरुष-दृष्टि से अदृश्य रहेंगी।

वेदवती : तो क्या हम भी इस समय पुरुष-दृष्टि से अदृश्य हैं?

सीता : हाँ, यदि इस समय कोई पुरुष इधर आ जाय तो हम उसे नहीं दीख पड़ेंगी।

वेदवती : तब भी, क्या आज यहीं वास करने का विचार है?

सीता : नहीं (खड़ी होकर), चलो। मैं तो यह कुंदमाला पुष्करिणी को अर्पित करने आयी थी। मुझे इसे अर्पण कर लेने दो।

[सीता सरिता में प्रवेश कर हाथ जोड़ कुंदमाला पुष्करिणी में प्रवाहित करती हैं।]

वेदवती : तुम यह कुंदमाला पुष्करिणी को क्यों अर्पित करती हो ?

सीता : (दुःखित स्वर में) जिस दिन, स्वामी द्वारा त्यागी हुई मुझ हतभागिनी को वत्स लक्ष्मण वन में छोड़ गये थे, उस समय मैंने पुष्करिणी यह प्रार्थना की थी कि कुशलपूर्वक प्रसव होने पर मैं प्रतिदिन कुंद पुष्पों की अच्छी गूंथी हुई माला उसको अर्पित किया करूँगी। तब से प्रतिदिन मैं एक माला पुष्करिणी को भेंट करती हूँ।

वेदवती : अच्छा, अब चलो। किसी के आने की आहट सुनायी पड़ती है।

[सीता तथा वेदवती का प्रस्थान।
महाराज राम तथा लक्ष्मण का प्रवेश।]

राम : वत्स लक्ष्मण, इस वन में आ कर, मुझे न जाने क्यों रह-रह कर जानकी स्मरण आ रही हैं। दंडक-वन के प्रवास की स्मृतियों से चित्त व्याकुल हो उठता है.....

लक्ष्मण : महाराज.....(सहसा) वह देखिये महाराज, सरिता की तरंगों में सर्पिणी की-सी वक्र गति वाली वह क्या वस्तु हो सकती है ? ठहरिये, मैं उसे निकाल कर लाता हूँ।

[लक्ष्मण सरिता के जल में प्रवेश कर कुंदमाला बाहर लाते हैं।]

राम : क्या है वत्स ?

लक्ष्मण : एक सुंदर कुंदमाला। महाराज, तनिक देखिये, इसका ग्रंथि-बंधन कितना अनूठा है ! [राम को माला देते हैं]

राम : (माला को भली-भाँति देख, पुलकित स्वर में) वत्स ! माला का यह विन्यास-कौशल पहले भी कहीं देखा है।

लक्ष्मण : कहाँ देखा है ?

राम : जानकी के अतिरिक्त और कौन भला ऐसी माला गूँथ सकता है ?

लक्ष्मण : विश्व-पिता की क्रीड़ायें समझने की सामर्थ्य हम अज्ञानियों में नहीं है।

राम : लोगों की माला की ग्रंथि-बंधन कला में समानता हो जाना बहुत सम्भव है। किंतु परित्यक्ता जानकी यहाँ इतनी दूर आ पहुँची हों—यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?

लक्ष्मण : कौन जाने, यह कुटिल देव कैसे-कैसे कौतुक करता रहता है ? आइये महाराज, पुष्करिणी तट के साथ माला के उद्गम-स्थान की ओर चलें।

राम : चलो, कदाचित् जानकी का कुछ पता लग जाय।

[राम तथा लक्ष्मण का प्रस्थान। सीता का उदास भाव से, एक उत्तरीय ओढ़े हुए प्रवेश।]

सीता : (उत्तरीय को देख, दुःखित स्वर में) यह वही उत्तरीय है, जिसे पहले वनवास में चित्रकूट की वनदेवी मायावती ने अपनी स्मृति-स्वरूप हमें भेंट किया था। कितना सुंदर और उज्ज्वल... दुग्ध-फेन से भी अधिक श्वेत!...इतने दिनों मेरे और स्वामी के हाथ में रहने के कारण यह मुझे अत्यंत प्रिय है, और जो आज इस प्रवास-दुःख में भी मेरा संगी है. ...इसे देख हृदय का आवेग असह्य हो उठता है। स्वामी भी इसी तपोवन में हैं—यह जान हृदय अब फटना चाहता है। इतनी व्यथा का भार यह भग्न हृदय किस प्रकार सम्हाल सकेगा ?....

[अत्यंत अधीर हो सीता एक शिला पर बैठ रोने लगती हैं। उनकी सिसकियों की अस्पष्ट-सी ध्वनि मात्र सुनायी देती है।

सहसा राम का प्रवेश। कुंदमाला उनके हाथ में लिपटी हुई है।]

राम : (स्वतः) लक्ष्मण बादरायण ऋषि के साथ गये। मैं फिर एकाकी रह गया। यह कुंदमाला सरिता के जल-प्रवाह में (संकेत कर) वहाँ मिली थी। तट पर उस ओर कदाचित् जानकी के पद्-चिह्न हों।

[तट के निकट जाते हैं। सहसा जल में सीता की छाया देखते हैं।]

राम : (आश्चर्य से) अरे जानकी !...किंतु यहाँ कैसे आयीं ?...

सीता : (राम का स्वर सुन, उनकी ओर देख, घबरा कर स्वतः) स्वामी !...यहाँ पर ?.....

[शिला से हट जाती हैं।]

राम : (आश्चर्य से हाथ बढ़ा) अरे अब कहाँ गयीं ?... किंतु यह तो जानकी न थीं। यह तो पुष्करिणी तट पर कहीं जाती हुई जानकी की जल में पड़ी छाया-मात्र थी। परंतु छाया तो आकृति के बिना नहीं हो सकती। तब इस छाया का मूल कारण कहाँ है ? [पीछे मुड़ पुष्करिणी तट को देखते हैं।] यहाँ तो कोई भी नहीं है .....यदि कोई भी नहीं है, तो वह प्रतिबिंब किसका था ?..... ओह ! यह भ्रम-जाल कैसा है ?..

[राम सिर पर हाथ रख बैठ जाते हैं और मूर्च्छित हो गिर पड़ते हैं]

सीता : (व्याकुल स्वर में) हा धिक ! आर्यपुत्र मूर्च्छित हो गये ! [राम के निकट जाती हैं। सहसा, ठिठक कर] किंतु यदि स्वामी मुझे देख, अपनी आज्ञा के भंग होने पर क्रोध करने लगें तो...तो लौट जाऊँ ? [लौटने लगती हैं। सहसा, वेग से घूमकर] किंतु नहीं, इन्हें अचेतन छोड़ कर कैसे चली जाऊँ ?...

[कुछ क्षणों के लिए संशयात्मक अवस्था में खड़ी रहती हैं। फिर व्याकुलतापूर्वक राम के निकट जाती हैं और उन्हें अपनी गोद में लिटा लेती हैं। राम चैतन्य होते हैं।]

राम : (इधर-उधर देखते हुए) कौन ?...कौन है मेरे निकट ?

[सीता राम को छोड़ अलग हट जाती हैं।]

राम : प्रिये, तुम कहाँ हो ? मुझे अपने हृदय से लगा लो।

सीता : (महर्षि वाल्मीकि के वचन के कारण, सीता के शब्द भी राम को नहीं सुनायी पड़ते) मैं निरपराध हूँ।

राम : प्रिये, मुझे अपने दर्शन दो। मेरे सम्मुख आओ।

सीता : (राम को अश्रव्य) भगवान वाल्मीकि का वचन अटल है। मैं अभागिनी क्या करूँ ?

राम : इस दीर्घ रोष को त्याग दो प्रिये।

सीता : (राम को अश्रव्य) मैं भी आपसे यही प्रार्थना करती हूँ।

राम : तुम मेरे लिए इतनी कठोर क्यों हो गयी हो ?

सीता : (राम को अश्रव्य) नाथ ! यह उलाहना विपरीत है।

राम : प्रिये, मैं सत्य कहता हूँ तुम सच्चरित्र हो।

सीता : (राम को अधन्य, प्रसन्न स्वर में) ओह ! तब यह प्राण त्यागने योग्य नहीं हैं।

राम : (व्यथित स्वर में) इतनी बातें कहीं, किंतु कोई उत्तर नहीं.....क्या जानकी चली गयीं..... मेरे इतने निकट आकर भी चली गयीं ?..... प्रिये, तुम कहाँ हो...[फिर आँख मूँद लेते हैं।]

[सीता अपने उत्तरीय द्वारा राम को हवा करने लगती हैं। राम आँखें खोलते हैं तथा उत्तरीय पकड़ लेते हैं। सीता उत्तरीय छोड़ देती हैं।]

राम : यदि कोई नहीं है, तो फिर इस उत्तरीय द्वारा मुझे हवा कौन कर रहा था..... (उत्तरीय देख) वही उत्तरीय है जिसे चित्रकूट की वनदेवी मायावती ने दिया था। यह तो जानकी के पास ही था..... कितने आश्चर्य की बात है कि केवल उत्तरीय ही दीखता है, इसको धारण करने वाली जानकी नहीं !...जानकी, प्रिये तुम कहां हो ? मेरे निकट क्यों नहीं आतीं ?..... (तनिक ठहर कर) कहीं यह कोई भ्रम-जाल तो नहीं है ?.....कोई अप्सरा तो मुझे इस प्रकार नहीं ठग रही है ? [पुनः मूर्च्छित हो जाते हैं]

[सीता अपने आँसू पोंछ व्याकुलतापूर्वक कभी राम की ओर देखती हैं, और कभी तट की ओर। किसी की पग-चाप सुन वे शीघ्रतापूर्वक राम के हाथ से कंदमाला निकाल उनके गले में डाल देती

हैं, तथा अपना उत्तरीय ले शीघ्रता से प्रस्थान करती हैं।

लक्ष्मण तथा राम के सखा कौशिक का प्रवेश। राम को मूर्च्छित देख शीघ्रता से उनके निकट जाते हैं। लक्ष्मण अपने उत्तरीय से उन्हें हवा करते हैं।]

राम : (सचेत हो कर, इधर-उधर देख) कौन ?... लक्ष्मण !..तुम कब आये ? जिस समय तुम आये, उस समय यहाँ पर कौन था ?

लक्ष्मण : (चकित स्वर में) कोई भी नहीं। तट जन-शून्य था। क्यों, कौशिक ?

कौशिक : (सिर हिला कर) हाँ। (एक क्षण रुक) क्यों, क्या हो गया ?

राम : कुछ नहीं। (गले में कुंदमाला देख) यह माला मेरे गले में कैसे आयी ? तुमने पहिनायी।

लक्ष्मण : नहीं तो। क्या यह आर्य ने स्वयं नहीं पहिनी ?

राम : तब तो वह छाया निश्चय ही जानकी की थी।

लक्ष्मण : कौन छाया ?

राम : (खड़े होकर) यह इस समय रहने दो। (कौशिक से) मित्र कौशिक, कहो तुम किधर से भूल पड़े ?

कौशिक : मित्र तुम्हें ढूँढने में आज मैंने आकाश-पाताल एक कर दिया।

राम : (उपहास के स्वर में) मित्र इतना भीषण कष्ट क्यों ?

कौशिक : आज प्रातः मोतिया-मंडप में छिप कर बैठे हुए मैंने आपस में बात करती हुई अप्सराओं और मुनि-कन्याओं के मुख से एक गुप्त षड़यंत्र का पता लगाया।

लक्ष्मण : कैसा षड़यंत्र ?...

कौशिक : स्वर्ग की कोई अप्सरा—उर्वशी या तिलोत्तमा—बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई, पूजनीया जनक कुमारी का रूप धारण कर तुम्हारा उपहास करना चाहती है।

राम : (विचारते हुए) कदाचित् तुम ठीक ही कहते हो कौशिक। (ठहर कर) किंतु क्या मैं ठगा गया ?

लक्ष्मण : चलिये, शिविर में चलें। वहीं बात करेंगे।

[राम, लक्ष्मण तथा कौशिक का प्रस्थान]

परदा गिरता है।

द्वितीय अंक

[शिविर। महाराज राम रत्न-आभूषण-जड़ित सिंहासन पर चिंतातुर मुद्रा में बैठे हैं। उनके सखा कौशिक का प्रवेश।]

कौशिक : (राम को चिंतित देख) हे मित्र, तुम्हारे सिंहासन के यह सिंह अधिक भार उठाने के कारण क्लांत प्रतीत होते हैं। यह देखो, इनके मुख-विवर से निकल कर गिरती हुई गजमुक्ताओं के बहाने मानों झाग निकल रहे हैं।

राम : किंतु इन सिंहों पर किसका भार अधिक पड़ गया ?

कौशिक : आपके अतिरिक्त इस सिंहासन पर और कौन प्रतिष्ठित होता है ?...मेरा विचार है कि अपनी भुजाओं द्वारा पृथ्वी को, तथा हृदय में पृथ्वी की पुत्री सीता को धारण किये रहने से ही आप अधिक भारी हो गये हैं।

राम : (दीर्घ निःश्वास ले कर) मित्र ठीक है। मैं निरंतर जानकी को स्मरण करता रहता हूँ।

कौशिक : दोष के कारण, या गुण के कारण ?

राम : न दोष से, न गुण से।

कौशिक : (विस्मित हो कर) इन दोनों को छोड़ कर स्त्रियाँ कैसे स्मरण की जा सकती हैं ?

राम : अन्य मनुष्यों का प्रेमावेश किसी कारण पर ही अवलंबित रहता है, किंतु राम और जानकी के संबंध में यह बात नहीं है। मेरा प्रेम सुख-दुःख में भी तिरोहित न होने वाला प्रेम है। न ही वह गुण और दोष की अपेक्षा करता है। इसी कारण मेरा यह स्वाभाविक प्रेम-बंधन मेरी आत्मा के समान जानकी पर चिर-काल से अप्रकट रहा है।

कौशिक : मित्र, कुसुम-कोमल वैदेही को असत्य मधुर वचनों से आप मेरे सम्मुख न ठगें। आप ही देवी सीता के बिना... ...

राम : नहीं कौशिक, यह विचार ठीक नहीं कि मैं एकांत में भी जानकी के प्रति उदासीन हूँ। मेरा प्रेम बाहर से कठोर अवश्य है, किंतु भीतर से राग-अनुराग से लिप्त है। कठिन मृणाल के कोमल तंतुओं की भाँति बाहर से उसका पता नहीं चलता।

कौशिक : (राम को अधिक दुःखित देख, विषय बदल कर) अरे हाँ, मैं तो भूल ही गया।

राम : क्या भूल गये।

कौशिक : मैं तो यह कहने आया था कि अपनी कला दिखलाने के लिए बाहर से दो तापस-कुमार आये हैं। वे स्निग्ध श्याम वर्ण के हैं। उनके शरीर में तरुणता प्रकट नहीं हुई है। बाल्यावस्था के रूप-लावण्य के कारण वे काम-देव के पुत्रों के समान हैं। वे आकार में

साल-वृक्षों की तरह ऊँचे, स्फूर्तिमान, बलशाली, अत्यंत धीर, ललित तथा उदार प्रतीत होते हैं।

राम : उन्हें मेरे निकट आने में क्या बाधा है ?

कौशिक : कौतूहल उत्पन्न करने वाले इन दोनों कुमारों का परिचय तो सुन लो पहले। यह दोनों भगवान वाल्मीकि के शिष्य हैं। वीणा-वादन में अत्यंत प्रवीण हैं। महर्षि की आज्ञा से यह उनकी रची हुई एक महापुरुष की चरित-गाथा को गांधर्व वेद की विधि के अनुसार वीणा की तंत्रियों से अनुविद्ध कर महाराज के सम्मुख गा कर सुनाने आये हैं। कठिन विन्यास वाली वह रचना महत् अर्थ से युक्त है। उसका प्रत्येक अक्षर योग-विरचित है।

राम : जाओ कौशिक, उन्हें शीघ्र बुला लाओ। अधिक समय तक खड़े रहने के कारण वे कहीं आत्म-ग्लानि से लौट न जायँ।

कौशिक : आत्म-ग्लानि कैसी ? उनके आकार की एक-रूपता और जटा-जूट से भूषित मुख को देख, महाराज दशरथ के जीवन-काल में आपके और श्री लक्ष्मण के बाल-भाव का स्मरण आ जाने के कारण अश्रुपूरित नेत्रों से कंचुकी खड़े उनसे बातचीत कर रहे हैं।

राम : (सविस्मय) उनकी आकृति हमारे बाल्यकाल के सदृश है ! मेरी उत्सुकता बढ़ रही है कौशिक। उन्हें यहाँ ले आओ।

[कौशिक का प्रस्थान। थोड़े समय बाद दो सुंदर तपस्वी बालकों के साथ प्रवेश।]

बालक : (एक साथ) महाराज के श्री चरणों में हमारा प्रणाम। [प्रणाम करते हैं।]

राम : (दुःखित भाव से स्वतः) ओह ! मेरे सामने ब्राह्मण का सिर झुक गया ! (प्रकट, हाथ जोड़ कर) मेरी इच्छा से यह प्रणाम आपके गुरू के ही चरणों में अर्पित हो।

बालक : महाराज सकुशल हैं ?

राम : (प्रसन्न स्वर से) आप दोनों के दर्शन-मात्र से कुशल है। आप तापस-कुमारों को देख मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। आप लोग मेरे निकट आइये। सकुचाते क्यों हैं ?...आइये... [दोनों कुमारों को अपने आधे सिंहासन पर बैठा लेते हैं] क्यों कौशिक, जानकी के निर्वासन को कितने वर्ष हो गये हैं।

कौशिक : (विचार कर) यह दसवाँ वर्ष है।

राम : (बालकों को देखकर) यदि जानकी का प्रसव सकुशल हुआ होगा तो उस संतान की आयु भी इस समय इतनी ही होगी...[अत्यधिक दुःख के कारण नेत्रों में आँसू आ जाते हैं]

कौशिक : (सहसा विह्वलतापूर्वक) अरे ! महाराज इन बालकों को छोड़िये। ये सिंहासन से नीचे उतर आयें ! शीघ्र ही।

[राम शीघ्रता से कुमारों को सिंहासन से उतार देते हैं।]

राम : कौशिक, तुम्हारा ऐसा कहने का क्या कारण है ?

कौशिक : महाराज, अयोध्या के वृद्ध नगरवासियों से मैंने सुना है कि रघुवंशियों के अतिरिक्त जो कोई भी इस सिंहासन पर चढ़ता है, उसके सिर के खंड-खंड हो जाते हैं।

राम : (काँप कर) बालको, तुम स्वस्थ हो न !

बालक : हाँ महाराज, हम तो स्वस्थ हैं। हमारे सिरों में कुछ भी विकार नहीं है।

कौशिक : (सविस्मय) बड़े आश्चर्य की बात है !

राम : इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? तपस्वियों के शरीर शुभ आशीर्वादों से सुरक्षित होते हैं। (बालकों से) बालको, तुमने अपने जन्म और दीक्षा से किस वर्ण और आश्रम को सुशोभित किया है ?

बालक : हमारा दूसरा वर्ण तथा पहला आश्रम है।

राम : (प्रसन्न हो कर) क्षत्रिय कुलों के प्रथम पुरुष सूर्य और चंद्र में से तुम्हारा वंश-प्रवर्त्तक कौन है।

बालक : सूर्य देव !

राम : तुम दोनों की आकृति समान है। क्या तुम सहोदर भाई हो ?

बालक : हाँ, हम सहोदर भाई हैं।

राम : तुम दोनों में ज्येष्ठ कौन है ? तुम्हारे नाम क्या हैं ?

एक बालक : (हाथ से दूसरे की ओर संकेत कर) आपके चरणों में प्रणाम करते समय मैं अपना नाम लव उच्चारित करता हूँ और आप भी गुरू जी को प्रणाम करते हुए अपना नाम...

कुश : मैं भी अपना नाम कुश उच्चारित करता हूँ।

राम : लव और कुश.....तुम्हारे गुरू का नाम क्या है ?

लव : भगवान वाल्मीकि हमारे गुरू हैं।

राम : किस संबंध से ?

लव : उपनयन संबंध से।

राम : मैं तुम्हारे शरीर के धाता—तुम्हारे पिता—का नाम जानना चाहता हूँ।

लव : मैं उनका नाम नहीं जानता। तपोवन में कोई भी उनका नाम नहीं लेता।

कुश : मैं उनका नाम जानता हूँ। उनका नाम 'निष्ठुर' है। माता उन्हें इसी नाम से पुकारती हैं।

कौशिक : विचित्र बात है। वे क्रोध में आ कर ऐसा कहती हैं या साधारण दशा में भी ?

कुश : नहीं साधारण भाव में ही। प्रायः माता हमें 'निर्दय के पुत्रो' या 'निष्ठुर के पुत्रो' कहती हैं।

कौशिक : महाराज, इनके पिता का नाम यदि 'निर्दय' या 'निष्ठुर' है, तो स्पष्ट है उसने या तो इनकी

माता का अपमान किया होगा, अथवा उसे निर्वासित किया होगा।

राम : क्यों कुमार, वह 'निर्दय' या निष्ठुर' क्या तुम्हारे आश्रम में है ?

लव : नहीं, हमने तो अभी तक उन्हें देखा भी नहीं है।

राम : (कुछ विचारने हुए) कौशिक, तनिक इनकी माता का नाम पूछना।

कौशिक : कुमारो, तुम्हारी माता का नाम क्या है ?

लव : माता के दो नाम हैं। तपस्वी लोग उन्हें 'देवी' कहते हैं और गुरू जी 'वधू'।

राम : (विचार कर) देखो कौशिक, इन कुमारों का वृत्तांत हमारे कुल की घटनाओं से मेल खाता है।

कौशिक : महाराज, क्या आप इन्हें देवी सीता के पुत्र समझते हैं ?

राम : (व्याकुल स्वर में) मैं क्या कहूँ, किंतु इन कुमारों की आयु, इनका कुल, वर्ण, उन्नत शरीर आदि देख तो ऐसा लगता है.....(कंठ भर आता है)

कौशिक : (विषय परिवर्तन कर) अच्छा कुमारो आओ। चलिये महाराज, सभा-मंडप में चलिये। वहाँ इन कुमारों के कविता सुनाने का प्रबंध किया गया है।

राम : (सिंहासन से उठते हुए) अच्छा, चलो! (लव, कुश की ओर मुड़ कर, स्नेहपूर्वक) आओ कुमारो।

[राम, कौशिक, लव तथा कुश का प्रस्थान।]

परदा गिरता है।

तृतीय अंक

[सभा-मंडप । मध्य में एक बहुत बड़ी यज्ञवेदी बनी हुई है । उसके चारों ओर बैठने के स्थान हैं । सभा-मंडप राजों, ऋषियों-तपस्वियों आदि से पूर्ण है । स्त्रियों के लिए अलग प्रबंध है । राजमहल की स्त्रियों में तीनों राज-मातायें, तथा लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न की पत्नियाँ भी हैं । तपस्विनियों में एक ओर सीता बैठी हुई हैं । लव-कुश सभा के बीच महाराज राम के सम्मुख खड़े हैं ।]

कौशिक : अच्छा बालको, अब तुम अपना गान प्रारंभ करो ।

लव-कुश : (गाते हैं)

बालार्क उदित हो गया,
दिशा प्राची में फैला अरुण राग ।
दशरथ दिनकर, कैकेयी,
सुमित्रा, कौशल्या का बन सुहाग ॥

राम : (प्रसन्न होकर, स्वतः) कवि ने स्वर्गवासी पिता जी को ही कथा का नायक बनाया है ।

लव-कुश : (गाते हैं)

सुकुमार कमलिनी-सी खिल कर
लेकर पराग-सी स्मित सुमधुर ।
मधुभार वाहिता, स्नेह सिक्त,
चर्चिता पतिकृपा अंगराग ॥

अवतरित हुए कौशल्या से
श्री राम, तथा कैकेयी से
श्री भरत, सुमित्रा से लक्ष्मण-
शत्रुघ्न सरिस सुत महाभाग ॥
श्री राम हुए परिणीत जनकनंदिनी,
सदृश मृदु-वयनी से।
माता कौशल्या पा जातीं सब कुछ
पा उनका स्मित-पराग ॥
नृप कुशध्वज की कन्याओं से,
परिणीत भरत-शत्रुघ्न हुए।
श्री लक्ष्मण का गुण-शील, बना
उर्मिला अधर पर मृदु विहाग ॥
रमणी रंजित, यश परिमंडित,
पुरजन के थे वे कृपा-पात्र।
उस ओर पिता के मस्तक पर था,
नृत्य कर रहा काल-नाग ॥
यह देख यशस्वी रामचंद्र
को करने सिंहासनारूढ़।
मंगल-वादन आरंभ हुआ,
जय ध्वनि बनती थी हर्ष-राग ॥
मामा के घर थे गये हुए तब,
भरत स्नेह से प्रेरित हो—

राम : (स्वतः) अब कदाचित यहाँ माता कैकेयी के संबंध में कुछ कहा जायगा। यह अनुचित होगा। (लव-कुश से) कुमारो, अब तुम इस प्रसंग को छोड़ सीता-हरण से प्रारंभ करो।

लव-कुश : (गाते हैं)

सुन सूर्पणखा से सीता की,
सुंदरता का अनुपम वर्णन।
अपहरण किया था रावण ने
उनका, छल वेषी भिक्षुक बन॥
निज विरह-सिंधु तब रघुवर ने,
ज्यों क्रोध-सेतु से पार किया।
लंका, लंकेश, निशाचर कुल का
बाणों से शृंगार किया॥
रावण को दे कर परम धाम,
लौटे ले कर के सीता को।
पर सह न सके अपवाद, दिया
वनवास चरित्र-पुनीता को॥
यद्यपि थी गर्भवती सीता,
दायित्व लिये थी वंशज का।
था किंतु राम ने लेश-मात्र न किया
विधान निज अंशज का॥
अति निर्जन वन में छोड़ उन्हें
लक्ष्मण जी हुए परावर्त्तित।
वैदेही का यह पुण्य चरित
क्यों न हो जाय फिर विश्व-विदित॥

लक्ष्मण : ओह ! अपयश का भागी मैं हुआ।

राम : तुम्हारा इसमें क्या अपराध है ? जानकी को निर्वासित करने की आज्ञा तो मैंने ही दी थी। हाँ बालको, आगे गाओ।

कुश : बस, गान तो इतना ही है। इसके आगे निराश सीता के प्राण-त्याग का वर्णन है। अतः अप्रिय कथा के भय से कवि ने कथा समाप्त कर दी है।

राम : (व्यथित स्वर में) जानकी के प्राण-त्याग का वर्णन...क्या जानकी अब इस संसार में नहीं है ? ...

[अत्यंत दुःखपूर्वक राम अपने गले में पड़ी मुर्झायी कुंदमाला देखते हैं और अपना सिर झुका लेते हैं। सभा में नीरवता छा जाती है।]

कुश : (राम को दुःखित देख) क्या आप ही रामायण की कथा के नायक श्री राम हैं ?

राम : (लज्जित स्वर में) हाँ, मैं ही वह दुःख का भागी हूँ। (ठहर कर) तुम ने यहीं तक कथा पढ़ी है या कथा ही समाप्त हो गयी है ?

कुश : यह तो हम नहीं जानते महाराज।

राम : वत्स लक्ष्मण, महर्षि कण्व से पूछो। कदाचित् वे बतला सकें।

कण्व : (अपने आसन से खड़े उठकर) महाराज राम, इसके आगे की कथा मैं सुनाता हूँ। सुनिये—

(गाते हैं)

असहाया सीता की सुन दारुण
दशा शिष्यगण से मुनिवर।
उस स्थल पर जा आश्वासन दे,
ले आये उनको निज घर॥

राम : (प्रसन्न हो कर) वत्स लक्ष्मण, भगवान वाल्मीकि ने जानकी को अपने आश्रम में ले जाकर मुझ पर बहुत भारी अनुग्रह किया है। फिर क्या हुआ महर्षि ?

कण्व : (गाते हैं)

सीता जी माता हुई वहाँ
दो शिशुओं की, कुछ दिन रहकर।
चंद्र-चंद्र प्रतिबिंब सुतों मिस
खिंच आये हों निकट सुघर॥

जन समूह : (प्रसन्नतापूर्वक) महाराज राम को पुत्र-जन्म की बधाई ! बधाई !

कण्व : (गाते हैं)

जातकर्म करके विधिवत
सब धर्म-मान्य व्यवहार हुए।
नामकरण फिर किया गया,
लव-कुश आहूत कुमार हुए॥

राम : (प्रसन्नतापूर्वक) लव-कुश—मेरे पुत्र !

[सिंहासन से उतर दोनों बालकों को अपने हृदय से लगा लेते हैं। सभा में उपस्थित व्यक्ति प्रसन्नता के कारण "महाराज राम की जय !...राजकुमार कुश-लव की जय !..." मनाने लगते हैं। राम अत्यधिक प्रसन्नता के कारण मूर्च्छित हो जाते हैं। सभा में कोलाहल व हाहाकार मच जाता है। सीता व्याकुलतापूर्वक उठ खड़ी होती हैं।]

वाल्मीकि : (सीता से) वधु जाओ। महाराज के निकट जाओ।

सीता : (लज्जापूर्वक) भगवन ! उनकी आज्ञा है कि मैं उनके सामने न आऊँ।

वाल्मीकि : मेरी उपस्थिति में अनुमति देने या रोकने वाला कौन है ? जाओ, मैंने तुम्हें उन्हें देखने की अनुमति दे दी।

सीता : (सिर झुका कर) जैसी आज्ञा भगवन !

[सीता राम के निकट जाती हैं। राम की दशा देख विह्वल हो रोने लगती हैं। राम सचेत होते हैं।]

राम : (करुण से) क्या वैदेही जीवित है ?

वाल्मीकि : राजन, आपके सामने ही तो है।

राम : (सीता को देख, लज्जित होकर स्वतः ही) ओह ! मैं कितना निष्ठुर हूँ !

सीता : (एक ओर को, अलग, कुश-लव से) यह कौन हैं जिसे तुम यों देख रहे हो ?

राम : (स्वतः धीरे से) ओह कैसी उदासीनता है जानकी की !... इतने दिनों बाद प्रथम-मिलन के समय भी एक बार मुख उठा कर मेरी ओर नहीं देखतीं।

वाल्मीकि : (सक्रोध) हे उदार हृदय, महाकुलीन, विवेकशील राजन् ! लव-कुश की माता भगवती वसुंधरा की पुत्री देवी सीता को केवल

लोकापवाद के कारण निर्वासित कर देना क्या उचित था? मैंने उसके चरित्र को विशुद्ध बताया था और अग्नि-देव ने उसकी शुद्धता का अनुमोदन किया था। इस पर अग्नि-देव का अविश्वास कर तुमने निराधार लोकापवाद को अपने हृदय में स्थान क्यों दिया?

[राम लज्जित भाव से सिर नीचा कर लेते हैं]

सीता : (स्वतः, खेदपूर्वक) शोक! मुझ अधन्या के लिए आर्यपुत्र का तिरस्कार किया जा रहा है।

बाल्मीकि : (सीता से) वैदेही! तपस्वियों को भी राजा दंड दे सकता है। तुम अपनी आत्मा की परिशुद्धि करो। विकार का उचित प्रतिकार करो।

सीता : (स्वतः) धिक्कार है मेरे जीवन को (प्रकट, हाथ जोड़ कर) समस्त लोकपाल, आकाशवासी देवतागण, गंधर्व, सिद्ध, विद्याधर, अपने बल से स्वर्गलोक के रहस्य प्रत्यक्ष करने वाले वाल्मीकि, विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ महर्षिगण; और समग्र संसार के शुभाशुभ कर्मों के साक्षी—रघुकुल के प्रवर्त्तक—सूर्य्य भगवान सुनें कि सीता चरित्र-शुद्धि के अनंतर इस प्रकार शपथ लेती है—(सारी सभा में निस्तब्धता छा जाती है) देवताओं और असुरों में भी अद्वितीय धनुर्धारी रघुकुलनंदन के अतिरिक्त यदि मैं ने और किसी को पातिव्रत के विरुद्ध

भाव से आँख उठाकर न देखा हो, या एक भी शब्द कुभाव से न कहे हों, या हृदय से चिंता तक न की हो, तो मेरे इस सत्य वचन के प्रभाव से सकल लोक को प्रत्यक्ष दर्शन देती हुई दिव्य रूपवती वसुंधरा लोक के समक्ष उसका स्पष्ट प्रमाण उपस्थित करें।

[सहसा एक विकट ध्वनि होती है। सभा-मंडप के चंदन-स्तंभ काँपने लगते हैं। पृथ्वी फटती है तथा उज्ज्वल स्वरूपिणी पृथ्वी-माता प्रकट होती हैं। सभा में उपस्थित पुरुष-स्त्री हाथ जोड़ "पृथ्वी माता की जय" पुकारते हैं।]

पृथ्वी : प्रतिनिवृत्ति के लिए दी हुई पतिव्रताओं की आज्ञा अनुलंघनीय है। मैं यहाँ सीता के कारण ही प्रकट हुई हूँ। सब ऋषि, दानव, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, मनुष्य और दिक्पाल क्षण भर ध्यान से सुनें। दशरथ के पुत्र राम के अतिरिक्त सीता ने मन से भी पर-पुरुष का ध्यान नहीं किया। सब लोग इसे जान लें।

[सहसा आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगती है और मंगल-वाद्य बजने लगते हैं। असीम हर्ष तथा प्रसन्नता से जन-समुदाय चीत्कार करने लगता है। पृथ्वी माता आशीर्वाद दे अंतर्धान होती हैं।]

वाल्मीकि : राजन वैदेही की पवित्रता स्वीकार करते हुए तुम इसे हाथ पकड़ ग्रहण करो और यज्ञाधिकार में नियुक्त करो।

राम : (सिर झुकाते हैं) महर्षि की आज्ञा मान्य है।

[राम लज्जापूर्वक वैदेही का हाथ पकड़ते हैं जो स्वयं लजा रही हैं। महर्षि वाल्मीकि आशीर्वाद देते हैं। उपस्थित समुदाय "महाराज राम की जय !.....राजरानी सीता की जय !....." मनाता है।]

लक्ष्मण : (लज्जित भाव से) यह वध्य, पापी लक्ष्मण श्री चरणों में प्रणाम करता है।

राम : (वाल्मीकि से) महर्षि, आपकी आज्ञा पा मैं वत्स लक्ष्मण का अभिषेक करना चाहता हूँ।

लक्ष्मण : (हाथ जोड़ कर) आप यदि प्रसन्न हों तो वत्स कुश का अभिषेक कर, तथा वत्स लव को युवराज पद पर आसीन कर, अपने चिरकाल के सेवक लक्ष्मण का सत्कार करें।

वाल्मीकि : मैं लक्ष्मण का समर्थन करता हूँ राजन !

लक्ष्मण : देखिये, देवताओं ने अभिषेक की सामग्री पहले ही संपादित कर दी है। यह देखिये, इंद्रदेव चंद्र-सा श्वेत छत्र उठाये हुए हैं। शची और जाह्नवी अपने हाथों में चँवर लिये हैं और प्रजानन जल से भरे स्वर्ण-कलश लिये खड़े हैं। (वाल्मीकि से) अपने शिष्य का अभिषेक कीजिये महर्षि।

[महर्षि वाल्मीकि कुश और लव का अभिषेक करते हैं। उपस्थित जन-समूह जय-ध्वनि करने लगता है। राम स्नेह-दृष्टि से सीता की ओर देखते हैं। सीता आँचल में से नवीन कुंदमाला निकाल राम के गले में पहना देती हैं। राम विस्मित होते हैं। जन-समुदाय सम्मिलित रूप से जय-जयकार मनाता है—"महाराज राम की जय !.... राजरानी सीता की जय !...युवराज कुश-लव की जय !..." शंख मंगल-वाद्य, घड़ियाल, घंटे आदि बजने प्रारंभ हो जाते हैं जो धीरे-धीरे मंद होते हुए वायु में विलीन हो जाते हैं।]

परदा गिरता है।